सद्गुरवे नमः

सरल बोध

अभिलाष दास

प्रकाशक

कबीर पारख संस्थान

संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, प्रयागराज-211011

Visit us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo.com

पहली बार वि०सं० 2019 सन् 1963

तेरहवीं बार वि०सं० 2079 सन् 2022

सत्कबीराब्द 624

ISBN : 81-8422-076-6

© **कबीर पारख संस्थान**

मूल्य : 12.00 रुपये

मुद्रक

जे.के. आर्ट प्रेस

गाड़ीवान टोला, प्रयागराज

Saral Bodh : ABHILASH DAS

निवेदन

प्रारम्भिक जिज्ञासुओं के जानने योग्य अनेक बातें इस 'सरल बोध' नामक छोटी-सी पुस्तक में संक्षिप्त रूप से संग्रह कर दी गयी हैं। तत्त्व, प्रकृति, अष्ट प्रमाण, पंच देह, पंच विषय, पंच इन्द्रिय, पंच प्राण, पंच कोशादि संज्ञाओं पर प्रायः संक्षिप्त रूप से सरल व्याख्या लिख दी गयी है। हमारे विचार से सत्संग की बहुत-सी बातें समझने के लिए इस पुस्तक से जिज्ञासुओं को सरलता हो जायगी। अनभिज्ञता, प्रमाद, आलस्य एवं दृष्टिदोष-वश किसी विषय के वर्णन में यदि त्रुटि हो गयी हो, तो विवेकवान सन्तजन भविष्य में सुधारते रहेंगे। अपनी भूल पर मैं विनम्र क्षमाप्रार्थी हूं।

विनीत

अभिलाष दास

सद्गुरवे नमः

सरल-बोध

१. कर्म दो हैं—पाप और पुण्य।

(क) पाप—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, असत्य-भाषण आदि।

(ख) पुण्य—जीव-दया, परोपकार, सत्य-मिष्ट भाषण आदि।

२. शब्द दो हैं—वर्णात्मक, ध्वन्यात्मक।

(क) वर्णात्मक—मनुष्य द्वारा बोले हुए अक्षरयुक्त सार्थक शब्द।

(ख) ध्वन्यात्मक—तबला, सितार आदि पदार्थों के घर्षण से हुआ शब्द।

३. सृष्टि दो प्रकार की है—जड़ात्मक, चैतन्यात्मक।

(क) जड़ात्मक—जो केवल जड़तत्त्वों के संयोग से

हो। जैसे छह ऋतु, वर्षा, बादल, वन, तृण, धातु आदि।

(ख) चैतन्यात्मक—जो जड़ तत्त्वों को लेकर चेतन जीवों द्वारा बने हों। जैसे चार-खानियों की देहें, वस्त्र, बरतन, घर, यन्त्र आदि नाना वस्तुएं।

४. सम्बन्ध दो हैं—संयोग-सम्बन्ध, समवाय-सम्बन्ध।

(क) संयोग-सम्बन्ध—दो भिन्न-भिन्न वस्तुओं का मिलान होना। जैसे चारों तत्त्वों का पारस्परिक सम्बन्ध। जीव-देह का अध्यास सम्बन्ध है, जो संयोग सम्बन्ध के अन्तर्गत है। परन्तु अध्यास मात्र होने से अध्यास का त्याग कर देने पर सदा के लिए जीव-देह का सम्बन्ध कट जाता है।

(ख) समवाय-सम्बन्ध—गुण-गुणी का नित्य सम्बन्ध। जैसे अग्नि और प्रकाश, जल और शीतलता आदि।

५. संयोग-सम्बन्ध में तीन संयोग शास्त्रों में माना है—(१) अन्यतर कर्मज संयोग, (२) उभय कर्मज संयोग, (३) संयोगज संयोग।

(क) अन्यतर कर्मज संयोग—एक ओर से क्रिया होकर संयोग होना। जैसे पक्षी और वृक्ष का

संयोग केवल पक्षी की ओर से क्रिया होकर संयोग होता है।

(ख) उभय कर्मज संयोग—दोनों ओर से क्रिया होकर संयोग होना। जैसे दो पहलवानों की ओर से क्रिया होकर दोनों का भिड़ना।

(ग) संयोगज संयोग—एक के साथ संयोग रहकर अन्य से संयोग करना। जैसे हाथयुक्त वृक्ष का स्पर्श करने से शाखा-पत्रादि का संयोग होता है।

सूचना—अन्यतर कर्मज संयोग, उभय कर्मज संयोग, संयोगज संयोग, ये तीनों संयोग एक संयोग सम्बन्ध के अन्तर्गत हैं। अतएव न्याय से दो ही सम्बन्ध सिद्ध होते हैं—संयोग-सम्बन्ध, समवाय-सम्बन्ध।

६. बन्धन दो हैं—खानी, वाणी।

(क) खानी-बन्धन—स्त्री, पुत्र, गृह, धनादि मोटी माया की आसक्ति।

(ख) वाणी-बंधन—कल्पित स्वर्ग-नरक लोक, परोक्षकर्ता, व्यापक मिश्रितवाद, देवी-देवादि झीनी माया की आसक्ति।

७. विधि—मण्डन करना, निषेध—खण्डन करना।

८. समष्टि—सबका समूह, सबका एक साथ, व्यष्टि—पृथक अंश, व्यक्ति।

९. गुण तीन हैं—सतगुण, रजगुण, तमगुण।

(क) सतगुण के कर्म—दया, क्षमा, विचार निर्मानता, पवित्रता, प्रसन्नता, सत्संग, उन्नतिशील कार्यों में उत्साह, भोजन-वस्त्रों में सादापन।

(ख) रजगुण के कर्म—मान-अभिमान, काम, भोग-विलास, फैशन, रसासक्ति आदि।

(ग) तमगुण के कर्म—कठोरता, हिंसा, मांस भक्षण, मद्यादिपान, क्रोध, अधिक निद्रा, उच्छिष्ट-बासी आदि भोजनों की रुचि।

सूचना—सत, रज, तम ये भावनामात्र प्राणियों के हृदय में रहते हैं। ये कोई द्रव्य नहीं हैं। हां, जड़ द्रव्यों में भी उत्पत्ति, पुष्टि तथा परिवर्तन को क्रमशः रज, सत, तम कहते हैं।

१०. कर्म तीन हैं—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण।

(क) संचित कर्म—पूर्व-पूर्व के नर-जन्मों से आज तक के किये हुए जितने सकाम शुभाशुभ कर्म बिना भोग दिये केवल बीज रूप हृदय में एकत्र हैं, उन्हें संचित कर्म कहते हैं। इसके साथ-साथ मुख्य संचित विषयासक्ति है।

(ख) प्रारब्ध कर्म—पूर्व के शुभाशुभ कर्मों के जितने कर्म भोग के लिए सम्मुख उदय हैं, जैसे यह शरीर और शरीर के सुख-दुखादि। यह प्रारब्ध कर्म है।

(ग) क्रियमाण कर्म—सकाम भावनापूर्वक आज नर-देह के वर्तमान समय में जितने पाप-पुण्य कर्म किये जाते हैं, ये क्रियमाण कर्म हैं।

सूचना—यथार्थ स्वरूप बोध और शुद्ध वैराग्य धारण करने से संचित कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है और बोध-वैराग्य के पुरुषार्थ से क्रियमाण कर्म होते नहीं तथा प्रारब्ध-भोग सुख-दुखादि भोगकर आप ही समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार बोधवान के तीनों कर्मों का नाश होकर वे मुक्त हो जाते हैं।

११. दोष तीन हैं—मल, विक्षेप तथा आवरण।

(क) मल—विषयों की आसक्ति या पाप है।

(ख) विक्षेप—अनेक जड़ संस्कारों की चंचलता है।

(ग) आवरण—अपने आप स्वरूप की भूल है।

सूचना—शुभकर्म एवं वैराग्य से मल, गुरुभक्ति तथा निरन्तर विचार से विक्षेप तथा स्वरूपज्ञान से आवरण का नाश होता है।

१२. कष्ट तीन हैं—आधि, व्याधि और उपाधि।

(क) आधि—काम-क्रोधादि मानसिक विकार हैं।

(ख) व्याधि—ज्वरादि शारीरिक रोग को कहते हैं।

(ग) उपाधि—बाहरी प्राणी-पदार्थों से उपद्रव प्राप्त होना।

१३. ताप तीन हैं—दैहिक, दैविक और भौतिक। इसी को क्रम से आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक

भी कहते हैं।

(क) दैहिक ताप—काम, क्रोधादि मानसिक विकार और ज्वरादि शारीरिक रोग।

(ख) दैविक ताप—जल, अग्नि, पाला, पत्थर आदि जड़तत्त्वों द्वारा जो कष्ट होता है, उसे दैविक ताप कहते हैं।

(ग) भौतिक ताप—मनुष्य, पशु, पक्षी तथा कीटादि किसी प्राणी द्वारा कष्ट का मिलना।

१४. अवस्था तीन हैं—जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति।

१५. पन तीन हैं—बालकपन, युवापन और वृद्धपन।

१६. कर्म करने के साधन तीन हैं—काया, वाचा तथा मन।

१७. काल तीन हैं—प्रातः, मध्याह्न और सायं। अथवा भूत, भविष्य एवं वर्तमान।

(क) भूत—बीता हुआ समय।

(ख) भविष्य—आगे आने वाला समय।

(ग) वर्तमान—प्रत्यक्ष का समय।

१८. प्राणी तीन प्रकार हैं—जलचर, थलचर, और नभचर।

(क) जलचर—जल में विचरने वाले।

(ख) थलचर—पृथ्वी पर विचरने वाले।

(ग) नभचर—आकाश में विचरने वाले।

१९. त्रिदोष—वात, पित्त और कफ।

२०. द्रव्य के तीन प्रकार हैं—ठोस, तरल और वाष्प (भाप)।

२१. धन की तीन गति है—दान, भोग और नाश।

२२. वास स्थान तीन हैं—पुर, ग्राम और नगर।

२३. लिंग तीन हैं—पुलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग।

२४. ज्ञान तीन हैं—परोक्ष, प्रत्यक्ष और अपरोक्ष।

(क) परोक्ष ज्ञान—स्वर्ग-नरक लोक, नाना देवी-देव, कर्ता-ब्रह्म आदि अदृश्य कल्पित ज्ञान।

(ख) प्रत्यक्ष ज्ञान—मन सहित आंख, नाक, जिह्वा, कान तथा त्वचा के सामने क्रम से रूप, गन्ध, रस, शब्द और स्पर्श का ज्ञान।

(ग) अपरोक्ष ज्ञान—सर्व दृश्य भास रहित अपने आप चेतन स्वरूप का ज्ञान अपरोक्ष-ज्ञान या स्वयंप्रत्यक्ष ज्ञान है।

२५. ध्याता, ध्यान और ध्येय।

(क) ध्याता—ध्यान करने वाला है।

(ख) ध्यान—ध्येय में मन लगाना है।

(ग) ध्येय—जिसका ध्यान किया जाय, वह है।

२६. ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय।

(क) ज्ञाता—ज्ञान करने वाला है।

(ख) ज्ञान—वस्तु की यथार्थ परीक्षा हो जाना है।

(ग) ज्ञेय—ज्ञान करने योग्य। अथवा जिसका ज्ञान किया जाय।

२७. शरीर, घर, घड़ा, वस्त्रादि संसार में ऐसे अनेक चेतन सत्ता रचित पदार्थ हैं, जिनके कारण तीन हैं—निमित्तकारण, साधारणकारण, उपादानकारण।

(क) निमित्तकारण—कार्य बनाने वाला। जैसे घड़ा बनाने वाला कुम्हार।

(ख) साधारणकारण—जिन साधनों को लेकर कार्य बनाया जाय। जैसे घड़ा बनाने में कुम्हार चक्र-दण्डादि साधन लेता है।

(ग) उपादनकारण—जिन वस्तुओं का रूपान्तर कार्य हो। जैसे घड़ा रूप कार्य बनाने में मिट्टी।

सूचना—जगत का बनाने वाला कोई कर्ता नहीं है। जड़-चेतनमय जगत प्रवाह रूप अनादि है।

२८. द्रष्टा, दृश्य और दर्शन।

(क) द्रष्टा—देखने वाला है। जीव शुद्ध चेतन है, वही मन सम्बन्ध होने से द्रष्टा कहा जाता है।

(ख) दृश्य—जो वस्तु देखने में आवे, वही दृश्य है। पाचों विषय ही दृश्य हैं।

(ग) दर्शन—द्रष्टा द्वारा दृश्यों का देखा जाना ही दर्शन है।

२९. नाड़ियां तीन हैं—ईडा, पिंगला और सुषुम्णा।

(क) ईडा नाड़ी—नाक के बायें छिद्र का क्रियाशील वायु। इसे चन्द्र नाड़ी भी कहते हैं। यह स्त्री का अंश माना गया है।

(ख) पिंगला नाड़ी—नाक के दायें छिद्र का क्रियाशील वायु। इसे सूर्य नाड़ी भी कहते हैं। यह पुरुष का अंश माना गया है।

(ग) सुषुम्णा नाड़ी—नाक के दोनों छिद्रों में समान गतिशील वायु। इसे राहु नाड़ी भी कहते हैं। यह नपुंसक का अंश माना गया है।

३०. प्राणायाम की तीन क्रियाएं—पूरक, कुम्भक और रेचक।

(क) पूरकक्रिया—ईडा (बायें) नाड़ी से धीरे-धीरे श्वास भीतर खींचना।

(ख) कुम्भकक्रिया—श्वास को मस्तक में स्थिर रखना।

(ग) रेचकक्रिया—पिंगला (दायें) नाड़ी से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालना।

सूचना—इन तीनों क्रियाओं को मिलाकर एक 'प्राणायाम' होता है। पारख सिद्धान्त में स्थिर साधक के लिए प्राणायाम करने की कोई आवश्यकता नहीं। यहां वासना त्यागकर स्वरूपस्थिति करना ही महान योग है। हां, प्राणायाम स्वास्थ्य के लिए अच्छा होता है।

अतः करना चाहिए।

३१. वाणी तीन हैं—रोचक, भयानक और यथार्थ।

(क) रोचक—शुभकर्मों का फल स्वर्गादि प्रतिपादन।

(ख) भयानक—अशुभ कर्मों का फल नरकादि प्रतिपादन।

(ग) यथार्थ—शुभाशुभ कर्मों के फल सुख-दुखों की प्राप्ति का प्रतिपादन तथा स्वरूपज्ञान से मोक्ष की सिद्धि।

३२. प्रिय, मोद, प्रमोद—

(क) प्रिय—वस्तु देखने का आनन्द।

(ख) मोद—वस्तु मिलने का आनन्द।

(ग) प्रमोद—वस्तु का अनुभव लेने का आनन्द।

३३. काल, सन्धि, झाईं—

(क) काल—कल्पना, दुर्गुण, मन एवं विषय-कल्पना में भ्रमाने वाले नर-नारी।

(ख) सन्धि—जड़-चेतन की ग्रंथि एवं परोक्ष ईश्वर-देवादि की मान्यता।

(ग) झाईं—व्यापक ब्रह्म की मानन्दी, मनोभास।

सूचना—उपर्युक्त तीनों जीव के बन्धन हैं।

३४. ब्रह्मवादियों ने सत्ता तीन मानी है—प्रातिभासिक सत्ता, व्यावहारिक सत्ता और पारमार्थिक सत्ता।

(क) प्रातिभासिक सत्ता—रज्जु में सर्प, सीपी में चांदी आदि के समान ब्रह्म में जगत की प्रतीति, ऐसा मानना।

(ख) व्यावहारिक सत्ता—कल्पित ईश्वर रचित जगत-पदार्थ व्यवहार करने मात्र के लिए हैं, सत्य नहीं, ऐसा मानना।

(ग) पारमार्थिक सत्ता—एक ब्रह्म ही सर्वत्र पूर्ण है, अन्य कुछ नहीं, ऐसा मानना।

सूचना—उपर्युक्त मान्यताएं ब्रह्मज्ञानियों की हैं। जड़-चेतन भावरूप नित्य हैं।

३५. बुद्धि तीन प्रकार की होती है—केलापाती-बुद्धि, जूता-बुद्धि तथा कम्बल-बुद्धि।

(क) केलापाती-बुद्धि—थोड़ी शिक्षा से बहुत ज्ञान हो जाना। जैसे केला के पत्ते को थोड़ा फाड़ने से वह बहुत फट जाता है।

(ख) जूता-बुद्धि—जितना सिखाया जाय उतनी ही बुद्धि होना। जैसे चाम के जूता में जितना छिद्र किया जाय, उतना ही रहता है।

(ग) कम्बल-बुद्धि—शिक्षा सुनते समय ज्ञान रहना, पीछे सब भूल जाना। जैसे कम्बल में सूई प्रवेश करने से छिद्र होता है, परन्तु निकाल लेने पर तुरन्त छिद्र मुंद जाता है।

३६. तत्त्व चार हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु।

३७. खानि चार हैं—मनुष्य, पिण्डज, अण्डज और उष्मज।

सूचना—स्थावर-अंकुरज अर्थात बेलि, वृक्ष, झाड़-पहाड़ इत्यादि कोई चेतनयुक्त खानि नहीं हैं अर्थात बेलि-वृक्ष आदि में जीव नहीं होते। ये केवल दीपक-ज्योतिवत पृथ्वी, जल आदि तत्त्वों से बनते-मिटते हैं।

३८. अन्तःकरण के चार भेद हैं—मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार।

(क) मन—किसी बात को सुनकर सोचने लगना, यह मन का धर्म है।

(ख) चित्त—उक्त बात पर तर्कपूर्वक विचार करना कि यह क्या है, इसमें क्या सत्य है, क्या असत्य है आदि, चित्त का धर्म है।

(ग) बुद्धि—उक्त बात पर निर्णय कर देना कि यह सत्य है, यह असत्य है, यह ऐसा है इत्यादि, यह बुद्धि का धर्म है।

(घ) अहंकार—उक्त निर्णय पर अपना सिद्धांत मान लेना या उसी अनुसार कार्य आरम्भ कर देना अहंकार का धर्म है।

३९. वेद चार माने गये हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।

४०. चार वेदऋषि माने गये हैं—अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा।

४१. चार पुरुषार्थ माने गये हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

४२. भोजन के प्रकार चार हैं—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य तथा चोष्य।

(क) भक्ष्य—चबाने योग्य पदार्थ, जैसे रोटी, भात, चबैना आदि।

(ख) भोज्य—जो निगला जाता है, जैसे दूध, शर्बत आदि।

(ग) लेह्य—चाटने योग्य पदार्थ, जैसे चटनी आदि।

(घ) चोष्य—चूसने योग्य पदार्थ, जैसे ऊख, आम आदि।

४३. वाणी के चार भेद—जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख और गुरुमुख।

(क) जीवमुख—अज्ञानी जीव द्वारा कल्पित देवादि की स्तुति।

(ख) मायामुख—भ्रमिक मतवादियों की भ्रम वाणी तथा विषयी नर-नारियों की विषय-वाणी।

(ग) ब्रह्ममुख—अपने को जड़-चेतन अभिन्न व्यापक ब्रह्म कथन करना।

(घ) गुरुमुख—सार-शब्द, सत्य-निर्णय।

सूचना—उपर्युक्त क्रमशः तीन वाणियों को त्यागकर

गुरुमुख वाणी ही ग्रहणीय है।

४४. चार साधन हैं—विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुता।

(क) विवेक—विचार से जड़-चेतन पृथक-पृथक करना।

(ख) वैराग्य—संसार-शरीर पंच विषय दृश्य भोगों में दुख और दोषों के दर्शन।

(ग) षट् सम्पत्ति—शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरामता और तितिक्षा। (मन को रोकना शम है। इन्द्रियों को रोकना दम है। सद्ग्रन्थ और विवेकी साधु-गुरु में प्रेम-विश्वास रहना श्रद्धा है। सब शंकाओं का नाश होना समाधान है। संसार-शरीर, पंचविषय, प्राणी-पदार्थों के प्रति अधिक अभाववृत्ति रखना उपरामता है। सुख-दुख, मान-अपमान सहन करना तितिक्षा है।)

(घ) मुमुक्षुता—मोक्ष प्राप्ति की प्रबल इच्छा होना।

४५. चार प्रकार के साधक—आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी।

(क) आर्त—रोग तथा दुख से छूटने की इच्छा रखने वाला।

(ख) अर्थार्थी—द्रव्य, राज्य आदि प्राप्ति की इच्छा रखने वाला।

(ग) जिज्ञासु—ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखने वाला।

(घ) ज्ञानी—कल्याण रूप या मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाला।

४६. नीति चार हैं—साम, दाम, भेद और दण्ड।

(क) साम—समता लेकर शत्रु, नौकर या प्रजा को वश करना।

(ख) दाम—पैसा या धन देकर शत्रु, नौकर या प्रजा को वश करना।

(ग) भेद—फूट डाल या डलवा कर शत्रु, नौकर या प्रजा को वश करना।

(घ) दण्ड—दण्ड देकर शत्रु, नौकर या प्रजा को वश करना।

सूचना—जब जैसी योग्यता होती है तब वैसी नीति राजा बरतते हैं। कल्याणार्थी को चाहिए कि कुसंग का त्याग करते हुए हृदय से राग-द्वेष रहित सबसे समता और शुद्ध मैत्री भावना रखे।

४७. मनुष्य के चार प्रकार—उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ तथा अधम।

(क) उत्तम—संसार को असार समझने वाला।

(ख) मध्यम—अपने तन-धन से दूसरे की सेवा करने वाला।

(ग) कनिष्ठ—न दूसरे का लेने वाला न अपना देने वाला।

(घ) अधम—अपना न देकर दूसरे का धन अपना बना लेने वाला।

सूचना—उत्तम न बन सके तो मध्यम मार्ग में रहे; कनिष्ठ-अधम कभी न बने।

४८ मनुष्य के चार प्रकार—दानी, उदार, सूम और मक्खीचूस।

(क) दानी—समय से स्वयं न खाकर दूसरे को खिलाने वाला।

(ख) उदार—स्वयं खाने वाला और दूसरे को भी खिलाने वाला।

(ग) सूम—स्वयं खाने वाला, परन्तु दूसरे को न खिलाने वाला।

(घ) मक्खीचूस—ठीक से न स्वयं खाने वाला और न दूसरे को खिलाने वाला।

सूचना—दानी न बन सके तो उदार अवश्य बनना चाहिए। सूम और मक्खीचूस कभी न बने।

४९. पतिव्रता स्त्री के चार प्रकार—उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ तथा अधम।

(क) उत्तम—अपने पुरुष के अतिरिक्त संसार के पुरुषों में पुरुष की भावना ही न होना।

(ख) मध्यम—पराये पुरुषों को पिता, भाई और पुत्रवत समझना।

(ग) कनिष्ठ—अपने धर्म-कुल को विचारकर

व्यभिचार से बचे रहना।

(घ) अधम—समय न पाने से या कुटुम्ब के भय से व्यभिचार से बचे रहना।

५०. चित्त शुद्धि के चार उपाय—मैत्री, करुणा, मुदिता तथा उपेक्षा।

(क) मैत्री—ज्ञानी एवं सुखियों से प्रेम करना। इससे ज्ञान मिलता है और अभिमान तथा द्वेष दूर होते हैं।

(ख) करुणा—दुखियों पर दया। इससे घृणा दूर होती है।

(ग) मुदिता—गुणवानों को देखकर प्रसन्नता। इससे ईर्ष्या दूर होती है।

(घ) उपेक्षा—दुष्टों से उदासीन रहना। इससे क्रोध दूर होता है एवं मनोव्याधि नहीं आती।

५१. कर्ता, कारण, क्रिया, कार्य।

(क) कर्ता—कार्य बनाने वाला।

(ख) कारण—जिस पदार्थ को लेकर कार्य बनाया जाय।

(ग) क्रिया—बनाने का काम करना।

(घ) कार्य—बनी हुई वस्तु।

५२. विषय पांच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।

५३. ज्ञान इन्द्रियां पांच हैं—कान, चाम, नेत्र, जिह्वा तथा नाक।

५४. कर्म इंद्रियां पांच हैं—हाथ, पैर, मुख, गुदा और उपस्थ।

५५. ब्रह्मांड के वायु पांच हैं—कूर्म, कृकिल, धनन्जय, देवदत्त तथा नाग।

(क) कूर्मवायु—नेत्र में है, इसका काम पलक गिराने-उठाने में बल देना है।

(ख) कृकिलवायु—नाक में, इससे छींक आती है।

(ग) धनन्जयवायु—इससे मृतक शरीर फूलता है।

(घ) देवदत्तवायु—मुख में, इससे जमुहाई आती है।

(ङ) नागवायु—कण्ठ में, इससे डकार आती है।

५६. पिण्ड के वायु पांच हैं—अपान, समान, व्यान, उदान और प्राण।

(क) अपानवायु—पेडू में, इसका काम मल-मूत्र का त्याग और गर्भ प्रसव करना है।

(ख) समानवायु—नाभि में, इसका काम भोजन पचाना है।

(ग) व्यानवायु—शरीर भर में, इसका काम जोड़ों को घुमाना और रस-रक्त का शरीर भर में वहन करना है।

(घ) उदानवायु—कण्ठ में, इसका काम जल-भोजन निगलने में बल देना तथा अन्न-जल विभाग करना है।

(ङ) प्राणवायु—हृदय में, इसका काम नाक द्वारा बाहरी वायु को पकड़ना-छोड़ना है।

५७. देह पांच हैं—स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण और कैवल्य।

(क) स्थूलदेह—एड़ी से चोटी तक यह दिखता हुआ शरीर।

(ख) सूक्ष्मदेह—अन्तःकरण पंचक, प्राण पंचक, कर्मेन्द्रिय पंचक, ज्ञानेन्द्रिय पंचक, विषय पंचक—ये पचीस मिलाकर सूक्ष्म देह की मान्यता है।

(ग) कारणदेह—अज्ञान है, क्योंकि अज्ञान ही देह होने का कारण है।

(घ) महाकारणदेह—ज्ञान है, जिससे अज्ञान निवृत्त हो।

(ङ) कैवल्यदेह—केवल ब्रह्म में स्थिति माना है।

सूचना—अन्य तीन देह कल्पित हैं, विवेक से दो ही देह निश्चित हैं—स्थूल और सूक्ष्म। एड़ी से चोटी तक दिखता हुआ प्रत्यक्ष शरीर 'स्थूल देह' है और पंच विषय का अध्यास रूप चतुष्टय अन्तःकरण वासनामय 'सूक्ष्म शरीर' है।

५८. कोश पांच माने जाते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय।

(क) अन्नमय कोश—अन्न से सुरक्षित रहने वाला गोलक इन्द्रिय युक्त 'स्थूलदेह'। इसका कर्म मार्ग माना है।

(ख) प्राणमय कोश—मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार और पंचप्राण का समूह जो अन्य तत्त्व युक्त विशेष वायु से रचित है। यही प्राणमय कोश है। इसे सूक्ष्म शरीर या सूक्ष्मदेह भी कहते हैं। नाना देवी-देवादि मानकर इसका उपासना मार्ग है।

(ग) मनोमय कोश—ईश्वर प्राप्तिअर्थ—योग करना, योग समाधि या सुषुप्ति आदि में चतुष्टय अन्तःकरण और जागृत, स्वप्नादि का लय होकर संस्कारों का बीज रूप से रह जाना, मनोमय कोश है। इसी को कारणदेह कहते हैं। इसका योग मार्ग है।

(घ) ज्ञानमय कोश—व्यापक ब्रह्म ही जगत का अभिन्न निमित्त उपादान कारण है। व्यापक ब्रह्म के, अन्तःकरणों में प्रतिबिम्ब पड़े हुए जीव हैं और माया में प्रतिबिम्ब पड़ा हुआ ईश्वर है। अथवा मुझ ब्रह्म आश्रित माया जगत का कारण है। वह ब्रह्म मैं हूं इत्यादि यही ज्ञानमय कोश है। ऐसी मान्यता ही

महाकारणदेह का घेरा है। इसका ज्ञान मार्ग है।

(ङ) विज्ञानमय कोश—जीव, ईश्वर, माया तथा जगत इत्यादि कुछ नहीं। सम्पूर्ण जैसा का तैसा एक मैं अद्वितीय आत्मा। यही विज्ञानमय कोश है। इसी मान्यता को कैवल्य देह कहते हैं। इसका विज्ञान मार्ग है।

५९. पंचकोश का वर्णन आगे दूसरी भांति से करते हैं।

(क) अन्नमय—अन्न से सुरक्षित रहने वाला इन्द्रियादिकों का समूह स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं। इसका कर्म मार्ग है।

(ख) प्राणमय—अपान, समान, व्यान, उदान और प्राण—इन पंच प्राणों का समूह, जो स्थूल शरीर-इन्द्रिय को सत्ता देता है। इसे प्राणमय कोश कहा जाता है। इसका उपासना मार्ग है।

(ग) मनोमय—सब स्मृतियों (यादगीरियों) का केन्द्र जो मन है, जो प्राणमय कोश को सत्ता देता है। इसे मनोमय कोश कहते हैं। इसका योग मार्ग है।

(घ) ज्ञानमय—सत्य-असत्य निर्णय करने का साधन जो बुद्धि है, जो मन को सत्ता देती है। इसे ज्ञानमय कोश कहा जाता है। इसका ज्ञान मार्ग है।

(ङ) आनन्दमय—ब्रह्मानन्द या विषयानन्द का अहंकृत समूह जो अहंकार है, जो बुद्धि को भी सत्ता देता है। इसे आनन्दमय कोश कहते हैं। इसका विज्ञान मार्ग है।

सूचना—द्रष्टा जीव का शुद्ध स्वरूप चेतन पांचों कोशों से सर्वथा पृथक है।

६०. अभिमान पांच हैं—विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा और निरंजन।

(क) विश्व अभिमान—घर, धन, जाति, देह, राज-काज आदि मोटी माया का अभिमान। इसका कर्मकांड है।

(ख) तैजस अभिमान—योग-क्रिया, ऋद्धि-सिद्धि आदि का अभिमान। इसका योग काण्ड है।

(ग) प्राज्ञ अभिमान—अन्य दैव परोक्ष ईश्वरादि की उपासना का अभिमान। इसका उपासना कांड है।

(घ) प्रत्यगात्मा अभिमान—एक ब्रह्म सबका कर्ता मानना। इसका ज्ञान कांड है।

(ङ) निरंजन अभिमान—मैं आत्मा जैसा का तैसा, अन्य कुछ नहीं। इसका अद्वैत कांड है।

सूचना—परख-बल से सब अभिमान का त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होना चाहिए।

६१. पंच क्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश।

(क) अविद्या—अपवित्र में पवित्र, दुख में सुख, विजाति में अपनापन और अनित्य में नित्य बुद्धि होना।

(ख) अस्मिता—चित्त में तदाकार होना एवं अहंकार करना।

(ग) राग—अनुकूल प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति में मोह होना।

(घ) द्वेष—प्रतिकूल प्राणी, पदार्थ और परिस्थिति में वैर एवं घृणा होना।

(ङ) अभिनिवेश—मृत्यु का भय होना।

सूचना—बोध, वैराग्य से इन सब का नाश होता है।

६२. साधक, साधन, साधना, साध्य और सिद्धि।

(क) साधक—फल की इच्छा से साधनों का प्रयोग करने वाला।

(ख) साधन—औजार या जिससे साधना की जाय।

(ग) साधना—साधन का प्रयोग करना।

(घ) साध्य—जिस फल-प्राप्ति की इच्छा हो।

(ङ) सिद्धि—फल की प्राप्ति हो जाना।

सूचना—जैसे (अन्नरूपी साध्य का) किसान साधक है; हल, बैल, कुदाल, बीज, खेत आदि साधन हैं; हल चलाना, फावड़ा चलाना, बीज बोना, सींचनादि साधना है।

अन्न साध्य है। अन्न की प्राप्ति हो जाना सिद्धि है।

वैसे मुमुक्षु साधक है, विवेक-वैराग्यादि साधन हैं, विवेक-वैराग्यादि का अभ्यास करना साधना है, मोक्ष (स्वरूपस्थिति) साध्य है। मोक्ष का मिल जाना सिद्धि है।

६३. भूमिकाएं पांच मानी गयी हैं—क्षिप्रा, गतागत, सौलेष्टता, सुलीन और अभाव।

(क) क्षिप्रा भूमिका—जाग्रत अवस्था में शुभाशुभ कर्मों का करना।

(ख) गतागत भूमिका—स्वप्न अवस्थावत कल्पित ईश्वर-प्राप्ति के लिए वासनारूप उपासना कांड का आचरण करना।

(ग) सौलेष्टता भूमिका—सुषुप्ति अवस्थावत कल्पित ईश्वर प्राप्ति की आशा से राजयोग, हठयोगादि का आचरण करना।

(घ) सुलीन भूमिका—तुरीय अवस्था ज्ञानदशा माया का अभाव करके साक्षी ब्रह्म स्वरूप।

(ङ) अभाव भूमिका—तुरीयातीत अवस्था महा शून्य विज्ञान मार्ग जड़ अजगरादि दशा धारण करना।

सूचना—परोक्ष कल्पना और जड़-चेतन अभिन्नवाद की भूल त्यागकर निजचेतन स्वरूप की स्थिति ही सत्य भूमिका है।

६४. हंसदेह या हंसभूमिका अर्थात मानवता के पांच

पक्के तत्त्व अर्थात सद्गुणों के नाम—दया, शील, सत्य, धैर्य और विचार।

६५. मनुष्य के पांच प्रकार—पामर, विषयी, साधक, मुमुक्षु और सिद्ध (मुक्त)।

६६. वाम मार्ग के पांच अंग—मदिरा, मांस, मंत्र, मुद्रा और मैथुन।

६७. योग की पांच क्रिया—नेति, धौति, बस्ति, कपालि और कुंजल।

(क) नेति—सूत की पतली रस्सी से नाक साफ करना।

(ख) धौति—चार अंगुल का चौड़ा और कम से कम पांच हाथ का लम्बा कपड़ा मुख में निगलकर पुनः निकालना, मल धोना।

(ग) बस्ति—गुदा द्वार से जल पेट में खींचकर बाहर निकालना।

(घ) कपालि—नाक और मुख से हवा तथा पानी खींचकर पुनः निकाल देना। देखें बीजक ७१ वें शब्द की व्याख्या में।

(ङ) कुंजल—तीन बार अधिक जल पीकर वमन करना।

६८. रज्जू में सर्प आदि का भ्रम होने के पांच कारण—(१) नेत्रदोष, (२) अन्धकार, (३) सामान्य प्रकाश, (४) दूरत्व और (५) सादृश्यता।

६९. चारों तत्त्वों में छह-छह भेद हैं—उनके नाम ये हैं—धर्म, गुण, क्रिया, शक्ति, मेल तथा आकार।

(क) पृथ्वी—धर्म-कठोर, गुण-गन्ध, परमाणुओं में क्रिया, शक्ति-धारणा, मेल-अन्य तीन तत्त्वों से तथा आकार-स्थूल है।

(ख) जल—धर्म-शीतल, गुण-रस, क्रिया-अधो-गमन, शक्ति-पिण्ड बांधने की, मेल-अन्य तीन तत्त्वों से तथा आकार-स्थूल है।

(ग) अग्नि—धर्म-उष्ण एवं प्रकाश, गुण-रूप, क्रिया-ऊर्ध्वगमन, शक्ति-दाहक, मेल-अन्य तीन तत्त्वों से तथा आकार-सूक्ष्म है।

(घ) वायु—धर्म-कोमल, गुण-शब्द और स्पर्श, क्रिया-तिरछी गमन, शक्ति-जोड़-तोड़, मेल-अन्य तीन तत्त्वों से तथा आकार-सूक्ष्म है।

७०. षट्ऊर्मी—भूख, प्यास, जन्म, मरण, हर्ष और शोक।

७१. षट्विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर।

७२. षट्विकार—उपजना, बढ़ना, बाल, युवा, वृद्ध तथा मृत्यु।

७३. षट्ऋतु—चैत-बैसाख वसन्त ऋतु। ज्येष्ठ-आषाढ़ ग्रीष्म ऋतु। श्रावण-भादो वर्षा ऋतु। कुआर-कार्तिक शरद ऋतु। अगहन-पौष शिशिर ऋतु। माघ-फाल्गुन हेमन्त ऋतु।

७४. छह महाद्वीप—एशिया, यूरोप, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, उत्तर अमरीका तथा दक्षिण अमरीका।

७५. छह शास्त्र—सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, योग तथा वेदान्त।

७६. छह शास्त्रों के कर्ता—सांख्य के कपिल, न्याय के गौतम, वैशेषिक के कणाद, मीमांसा के जैमिनि, योग के पतंजलि और वेदान्त के वादरायण।

७७. षट्रस—कडुवा, चर्फरा, खट्टा, मीठा, कसैला तथा खारा।

७८. षट् पशुकर्म—भोजन, छादन, मैथुन, भय, निद्रा और मोह।

७९. षट्दर्शन—योगी, जंगम, सेवड़ा (जैनी), संन्यासी, दरवेश (फकीर) तथा ब्राह्मण।

दोहा— योगी जंगम सेवड़ा, संन्यासी दरवेश।
छठवां कहिये ब्राह्मण, छौ घर छौ उपदेश॥

८०. षट्चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञा।

(क) मूलाधार चक्र—गुदा स्थान में चतुर्दल कमल युक्त।

(ख) स्वाधिष्ठान चक्र—पेडू स्थान में षट्दल कमल युक्त।

(ग) मणिपूर चक्र—नाभि स्थान में दसदल कमल युक्त।

(घ) अनाहत चक्र—हृदय स्थान में द्वादशदल कमल युक्त।

(ङ) विशुद्धि चक्र—कण्ठ स्थान में षोडसदल कमल युक्त।

(च) आज्ञा चक्र—त्रिकुटी (दोनों भौंहों के बीच) स्थान में द्विदल कमल युक्त।

सूचना—ब्रह्मांड एवं मस्तक में भ्रमरगुफा स्थान नाम रखकर वहां सहस्रदल कमल माने हैं। योगी लोग उपर्युक्त छहों चक्रों को बेधकर एवं सहस्रदल कमल भ्रमरगुफा में श्वास को स्थिर कर मोक्ष मानते हैं। परन्तु यह भ्रम है, सब वासनाओं के त्याग से मोक्ष होता है।

८१. ब्राह्मणों के षट्कर्म—विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना तथा दान लेना।

८२. ब्राह्मणों के नित्य षट्कर्म—स्नान, सन्ध्या, पूजा, तर्पण, जप और हवन।

८३. षट् ऐश्वर्य—ज्ञान, वैराग्य, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म तथा उदारता—ये छहों जिसमें हों, वह भगवान है, ऐसी मान्यता है।

दोहा—"ज्ञान विराग श्रीयुत, यश अरु धर्म निधान।
ऐश्वर्य षट् भाग युत, ताहि कहत भगवान॥"

८४. सातधातु—रस, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और वीर्य।

८५. प्राचीन द्वीपों के सात नाम—जम्बू, प्लक्ष, कुश, क्रौंच, शाक्र, शाल्मलि और पुष्कर।

८६. गायन के सात स्वर—सा, रे, ग, म, प, ध, नी।

८७. अष्ट मद—चार मद खानी के और चार मद वाणी के।

(क) खानी के मद—देह-मद, स्त्री-मद, धन-मद और राज्य-मद।

(ख) वाणी के मद—तप-मद, विद्या-मद, सिद्धि-मद और ज्ञान-मद।

८८. अष्ट मैथुन—स्मरण, कीर्तन, प्रेक्षण (देखना), श्रवण, केलि, गुह्य भाषण, शृंगार तथा स्पर्श।

सूचना—इन अष्ट मैथुनों का सर्वथा त्याग करना ब्रह्मचर्य है।

८९. अष्ट प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव।

(क) प्रत्यक्ष प्रमाण—जैसे मन सहित पांच ज्ञान इन्द्रियों के सामने शब्दादिक पांचों विषय प्रत्यक्ष हैं।

(ख) अनुमान प्रमाण—जो प्रत्यक्ष ज्ञान के पश्चात जाना जाय, जैसे दूर धुआं देखकर वहां अग्नि होने का अनुमान।

(ग) उपमान प्रमाण—जैसे गाय के समान गवय (नीलगाय) होती है।

(घ) शब्द प्रमाण—श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा कहे हुए वाक्य।

(ङ) ऐतिह्य प्रमाण—जो इतिह अर्थात इस प्रकार का था, उसने इस प्रकार किया, अर्थात किसी के जीवन चरित्र का नाम ऐतिह्य है।

(च) अर्थापत्ति प्रमाण—जैसे किसी ने कहा कि बादल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य होता है। इससे बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि बिना बादल के वर्षा और बिना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकते।

(छ) सम्भव प्रमाण—जहां एक वस्तु के बिना दूसरी वस्तु न रह सके, वहां एक के ग्रहण से दूसरे का ज्ञान होना सम्भव कहलाता है। जैसे विश्वास से प्रेम और ज्ञान से मोक्ष होना सम्भव है।

(ज) अभाव प्रमाण—जैसे किसी ने किसी से कहा कि हाथी ले आ। लाने वाला वहां हाथी का अभाव देखकर जहां हाथी था, वहां से ले आया। अथवा जहां कारण न होगा, वहां कार्य भी न होगा, जैसे ज्ञान के अभाव में मोक्ष न होगा।

सूचना—अनुमान प्रमाण से अभाव प्रमाण तक सातों प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत हैं।

अतएव प्रत्यक्ष प्रमाण की कसौटी से कसकर ही अन्य प्रमाण माने जा सकते हैं। जितनी बातें प्रत्यक्ष सृष्टि में विद्यमान हैं, वे ही प्रामाणिक मानने योग्य हैं। और जो प्रत्यक्ष सृष्टिक्रम के विरुद्ध बातें हों, वे माननीय नहीं हो सकतीं।

९०. अष्टाङ्गप्रणाम—सिर, आंख, हृदय, वचन, मन, हाथ, पैर और जांघ—इन आठों को नम्र करके प्रणाम करना।

९१. अष्टाङ्ग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

(क) यम—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

(ख) नियम—तप, शौच, सन्तोष, स्वाध्याय और प्रणिधान (इष्ट की शरणागति)।

(ग) आसन—किसी आसन से सुखपूर्वक विलम्ब तक बैठना।

(घ) प्राणायाम—श्वास-प्रश्वास की क्रिया का रुक जाना। (देखो ३०वीं संख्या)।

(ङ) प्रत्याहार—मन सहित इन्द्रियों का विकारों से रुक जाना।

(च) धारणा—ध्येय वस्तु में चित्त को बार-बार लगाना।

(छ) ध्यान—ध्येय में एकतान चित्त का लग जाना।

(ज) समाधि—अन्य की विस्मृति होकर केवल ध्येय

ही में चित्त की दृढ़ स्थिति हो जाना।

९२. अष्टसिद्धि—अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, दर्शित्व तथा वशित्व।

(क) अणिमा—छोटा रूप धारण करना।

(ख) महिमा—संसार में कीर्ति को प्राप्त होना।

(ग) लघिमा—कपासवत हल्का रूप धारण करना।

(घ) गरिमा—पर्वताकार बड़ा रूप धारण करना।

(ङ) प्राप्ति—जहां चाहे वहां चला जाना।

(च) प्राकाम्य—इच्छित मनोरथ पूर्ण करना।

(छ) दर्शित्व—गुप्त-प्रकट सब वस्तु देखना।

(ज) वशित्व—जिसे चाहे अपने वश कर लेना।

सूचना—ये सिद्धियां कल्पित हैं, बन्धन रूप हैं और साधक के लिए सर्वथा अनुपयोगी तो हैं ही।

९३. अष्टधातु—सोना, चांदी, तांबा, जस्ता, लोहा, सीसा, पारा तथा रांगा।

९४. अष्टमहासद्गुण—दया, क्षमा, सत्य, धैर्य, विचार, विवेक, वैराग्य एवं गुरुभक्ति।

९५. आठगुरु—(१) माता-पिता, (२) दाई, अर्थात दूध पिलाने वाली, (३) नाम धरने वाला, (४) विद्या पढ़ाने वाला, (५) दीक्षा देने वाला, (६) कल्पित

ईश्वर की उपासना में लगाने वाला, (७) अद्वैत ब्रह्म दर्शाने वाला तथा (८) सब कल्पना छुड़ाकर स्व-स्वरूप का बोध देने वाला।

सूचना—आठवां स्वरूप-बोधदाता ही मोक्षदायी प्रामाणिक गुरु मान्य है।

९६. नौ ग्रह—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु।

९७. काव्य के नौ रस—शृंगाररस, हास्यरस, करुणरस, रौद्ररस, वीररस, भयानकरस, वीभत्सरस, अद्भुतरस और शान्तरस।

९८. ब्राह्मणों के नौ गुण—शम, दम, तप, शौच, शांति, आर्जव (सरलता), ज्ञान, विज्ञान तथा आस्तिक्य।

९९. पृथ्वी के प्राचीन नौ खंड—इन्द्रखंड, नागखंड, वरुणखंड, गभिस्तखंड, ताम्रखंड, ब्रह्मखंड, भरतखंड, सौम्यखंड, कशेरुखंड।

१००. नवधाभक्ति—श्रवण, कीर्तन, नामस्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वन्दन, दासभाव, सखापन, आत्म-निवेदन।

१०१. महादेवपन्थी नौ नाथ—मच्छन्दरनाथ, गोरखनाथ, जालन्धरनाथ, चर्पटनाथ, मंगलनाथ, चम्बानाथ, घघ्घूनाथ, प्राणनाथ और गोपीनाथ।

१०२. तन, मन और वचन के दस दोष—

(क) तन के दोष—चोरी, हिंसा, व्यभिचार।

(ख) मन के दोष—ईर्ष्या, क्रोध, मन, छल।

(ग) वचन के दोष—गाली, निन्दा, झूठ

सूचना—तन के दोषों से भौतिक ताप, मन के दोषों से दैहिक ताप और वचन के दोषों से दैविक ताप की उत्पत्ति सन्तों ने माना है। कुछ सन्तों का विचार ऐसा है कि जैसे नाना खेतों के गेहूं को एक में पीस देने से पता नहीं रहता कि किस खेत के गेहूं का आटा कौन है, इसी प्रकार तन, मन, वचन के पापों में से कौन पाप के कौन ताप हैं—यह ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। इन दोनों मान्यताओं में न कोई विरोध है और न सिद्धान्त की हानि है। क्योंकि दोनों मान्यताओं में पाप का फल ताप होना अवश्य माना गया है।

१०३. कर्मी जीवों का सदैव दस अवस्थाओं में भ्रमण—गर्भ, जन्म, शिशु, बाल्य, कुमार, युवा, अधेड़, वृद्ध, मृत्यु तथा आवागमन।

१०४. धर्म के दस लक्षण—धैर्य, क्षमा, शम, दम, अस्तेय, शौच, शुद्ध-बुद्धि, यथार्थ विद्या, सत्य और अक्रोध।

१०५. दस दिशाएं—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, अर्ध तथा उर्ध।

सूचना—पूर्व-उत्तर कोण ईशान। पूर्व-दक्षिण कोण आग्नेय। दक्षिण-पश्चिम कोण नैऋत्य। उत्तर-पश्चिम कोण वायव्य। नीचे अर्ध। ऊपर को उर्ध कहते हैं।

१०६. शरीर के दस द्वार—दो आंखें, दो नाक, दो कान, मुख, गुदा और उपस्थ। ये मुख्य नौ द्वार हैं। दसवां द्वार सिर के तालुमूल में माना है।

१०७. दस मुद्रा—खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी, सर्वसाक्षिणी, सन्मुखी, उन्मीलनी, शाम्भवी, आत्मबोधनी, पूर्ण बोधिनी।

१०८. मैथुन में दस गुणों का नाश—ज्ञान, पुरुषार्थ की शक्ति, बल, वीर्य, लज्जा, यश, धन, कीर्ति, तप, मुक्ति समाज के गुण।

१०९. बारह बांट—हानि, ग्लानि, तृष्णा, ह्रास, मोह, भय, क्षुधा, दैन्य, क्षोभ, मृषा, अपकीर्ति और मृत्यु।

११०. चौदह रत्न—

श्री, मणि, रम्भा, वारुणी, अमी, शंख, गजराज।
कल्पद्रुम, शशि, धेनु, धनु, धन्वन्तरि, विष, बाज॥

१११. सूर्य के चौदह नाम—भास्कर, दिवाकर, प्रभाकर, भानु, आदित्य, स्कन्ध, त्रैलोचन, दिवासो, ग्रभस्त, जामिक, बार्तुल, विजय, मार्तण्ड, पतंग।

११२. अनर्थ के चौदह लक्षण—अप्रीति, काम, क्रोध, खेद, चिन्ता, चोरी, दम्भ, वैर, भय, मिथ्या, लोभ, विस्मरण, सर्वस्पर्धा, हिंसा।

११३. चौदह विद्याएं—ब्रह्मज्ञान, रसक्रिया, काव्य, वेद, ज्योतिष, व्याकरण, धनुर्विद्या, जलतरण, संगीत,

वैद्यक, अश्वसंवारन, कोक, नाटक-चाटक, चातुरी।

११४. धन में पन्द्रह दोष—चोरी, हिंसा, मिथ्या-भाषण, दम्भ, काम, क्रोध, दुर्व्यसन, धनमद, भेद, वैर, अविश्वास, वेश्यागमन, ईर्ष्या, जुआ खेलना, नाच-सिनेमादि देखना।

११५. अठारह पुराण—ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, नारदपुराण, मारकण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण, ब्रह्माण्डपुराण।

११६. वायु, महिमा, अंजली, तान, शपथ, धातु, देह, जय, मृत्यु, सन्तान, समाज, ऋतु, राशि, विधि, अग्नि और आत्मा शब्द को संस्कृत में पुलिंग और हिन्दी में स्त्रीलिंग माना है।

११७. अवतार चौबीस माने हैं—ब्रह्मा, वराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभदेव, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वन्तरि, मन्वन्तर, हयग्रीव, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

११८. पचीस प्रकृति—

(क) पृथ्वी की प्रकृति—हाड़, चाम, मांस, नस, और रोम।

(ख) जल की प्रकृति—लार, मूत्र, वीर्य, रक्त और पसीना।

(ग) अग्नि की प्रकृति—भूख, प्यास, आलस्य, नींद और जमुहाई।

(घ) चंचल वायु की प्रकृति—बलकरण, संकोचन, पसारन, बोलन और चलन।

(ङ) स्थिर वायु की प्रकृति—काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय।

सूचना—विचार से ज्ञात होता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इन चार तत्त्वों की २० ही प्रकृतियां हैं। काम-क्रोधादि तो मनोविकार हैं। ये प्रकृति नहीं हैं। प्राचीन रूढ़ि के अनुसार यहां २५ प्रकृति कहा गया, अन्यथा २० ही प्रकृति मान्य हैं। पृथ्वी की हाड़ आदि, जल की लार आदि, अग्नि की भूखादि और वायु की धावन आदि पांच-पांच प्रकृति ये सब मिलकर २० प्रकृति हैं। क्योंकि ज्ञान होने पर इनका बाध नहीं होता और कामादि प्रकृति नहीं, किन्तु मनोविकार हैं। इसलिए ज्ञान से उनका वाध हो जाता है। यदि कामादि प्रकृति होते तो इनका भी ज्ञान से वाध न होता।

११९. सद्गुण रूप दया, शील, सत्य, धैर्य और विचार—पांच पक्के तत्त्वों की पचीस प्रकृतियां।

(क) दया की प्रकृति—अद्रोह, समता, मैत्री, निर्भयता, समदर्शिता।

(ख) शील की प्रकृति—क्षुधानिवारण (निराश पद), प्रियवचन, शान्तिबुद्धि, प्रत्यक्षपारख तथा प्रत्यक्षसुख (जीवन्मुक्तिसुख)।

(ग) सत्य की प्रकृति—निर्णय, निर्विन्दु (निर्विषय), प्रकाश (शुद्धज्ञान), स्थिरता और क्षमा।

(घ) धैर्य की प्रकृति—झूठ न बोलना, सत्यग्रहण, निस्संशय, अचल तथा निरहंकार।

(ङ) विचार की प्रकृति—सत्यासत्य का निर्णय, यथार्थ ग्रहण, शुद्ध व्यवहार, शुद्ध भाव तथा यथार्थ पारख टकसार।

सूचना—उपर्युक्त पांच पक्के तत्त्व और पचीस पक्की प्रकृति नाम देकर जो वर्णन किया गया है, वास्तव में ये सद्गुण और सदाचरण हैं। ये मानव एवं जीवन्मुक्त पुरुष के लक्षण हैं।

१२०. सत्ताइस नक्षत्र—अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वा-फाल्गुनी, उत्तरा-फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद तथा रेवती।

१२१. अट्ठाईस नरक—रौरव, महारौरव, तामिस्र, अन्धतामिस्र, कृमिभोजन, शाल्मलि, तप्त भूमि,

सन्दंश, वज्र-कण्टक, अन्धकूप, कुम्भी पाक, शूकरमुख, कालसूत्र, असिपत्र, सारमेयादन, वैतरणी, विशसन, प्राणरोध, पूयोद, लालाभक्ष्य, सूचीमुख, अवीचि, क्षरकर्दभपान, रक्षोगुण भोजन, देहशूल, शूलगेह, पर्यावर्तन, अवट निरोध। ये सब कल्पित हैं। मन की मलिनता ही घोर नर्क है।

१२२. छानबे पाखण्ड—दस संन्यासी, बारह योगी, चौदह शेष, अठारह ब्राह्मण, अठारह जंगम, चौबीस, सेवड़ा (जैनी)।

दस संन्यासी बारह योगी, चौदह शेष बखान।
ब्राह्मण अठारह अठारह जंगम, चौबिस सेवड़ा परमान॥

१२३. अद्वैत मत—एक ब्रह्म ही अनादि एवं अनन्त है। इनकी मान्यता इस प्रकार है—जीव, ईश्वर, ब्रह्म, जीव-ईश्वर का भेद, अविद्या, अविद्या-चेतन का योग; इन छहों को ये अनादि मानते हैं। परन्तु ब्रह्मज्ञान होने पर एक ब्रह्म ही रह जाता है और अन्य पांच सांत अर्थात अंतसहित हैं। यही अद्वैत मत है।

१२४. द्वैत-मत—जीव, ईश्वर और प्रकृति ये तीनों अंश-अंशी भाव-रहित सर्वथा अनादि हैं।

१२५. विशिष्टाद्वैत-मत—जीव और प्रकृति ईश्वर के अंश हैं और उन्हीं द्वारा संचालित हैं। इस प्रकार ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन अनादि हैं।

सूचना—द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत मत में ईश्वर-ब्रह्म को मानन्दी कल्पित है। अनादि-अनन्त जड़-चेतन दो ही पदार्थ हैं।

१२६. यह दिखता हुआ जड़-चेतन मय जगत अनादि और अनन्त अर्थात सदा रहने वाला है। सारे जगत की न कभी उत्पत्ति होती है और न सर्वथा प्रलय।

१२७. भिन्न-भिन्न अगणित चेतन जीव अविनाशी, अखंड, अजर, अमर, नित्य और निराधार हैं। जड़-वासना-वश उनका चारों खानियों में कर्म वासनानुसार भ्रमण होता रहता है।

१२८. वासनावशी जीव शरीर छूटते समय प्रबल कर्मों के अधीन हुआ प्राणवायु युक्त नाक या मुख आदि द्वारा निकलकर पुनः शरीर धरने के लिए पुरुष के प्राण वायु द्वारा उसके वीर्य में ठहरता है और स्त्री के संयोग काल में पुरुष के वीर्य में सम्मिलित होकर स्त्री के उदरगर्भ में पहुंच जाता है, और पुनः शरीर रचना होने लगती है और उष्मजी जीव रस, गन्धादि तत्त्वों में शरीर धारण करते हैं।

१२९. देहधारी जीव का निवास हृदय में रहता है, किन्तु लक्ष्य द्वारा शरीर भर के सुख-दुखों को जानता है।

१३०. स्वरूप का यथार्थ बोध, संसार-शरीर और विषयों से दृढ़ वैराग्य तथा गुरुभक्ति, दया, क्षमादि सदरहनी—इन तीनों को प्राप्त हो जाने पर जीव

मुक्त हो जाता है।

१३१. कुम्हार, मिट्टी और चक्र-दण्डादि इन तीन कारणों से घड़ा बनता है। यदि इनमें से एक न रहे तो घड़ा नहीं बन सकता। इसी प्रकार अबोध, राग, संचित और क्रियमाण इन चार कारणों से पुनः जीव को गर्भ में जाना पड़ता है। मनुष्य शरीर में यदि बोध-वैराग्य धारणकर अबोध, राग तथा क्रियमाण को नष्ट कर दिया गया, तो अकेला संचित देह नहीं धरा सकता। बल्कि अन्य कारण-रहित संचित भी नष्ट हो जाता है।

१३२. जैसे अग्नि में बीज सेंक देने से या बीज का छिलका निकाल देने से बीज नहीं जमता, वैसे शुद्ध बोध एवं वैराग्य धारण हो जाने से विषयों की आसक्ति मिट जाने पर पुनः शरीर में जीव नहीं आता।

१३३. जो जीव मुक्त हो जाता है, वह कभी पुनः शरीर नहीं धारण करता है। वह दुखों से सर्वथा-सर्वदा रहित परम शांत रहता है।

१३४. मुक्त होकर जीव स्वयं निराधार एवं असंग रहता है। उसे कोई अन्य आधार की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि जीव स्वरूप से निराधार ही है।

१३५. दुराचरण—इन्द्रियों की प्रत्येक बुरी क्रिया का नाम दुराचरण है। जैसे—चोरी, हिंसा, व्यभिचार, असत्य

भाषण, अपवित्रता, दुर्व्यसन, ठगाई आदि।

१३६. दुर्गुण—मन की प्रत्येक बुरी क्रिया को दुर्गुण कहते हैं। जैसे—काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि।

१३७. सदाचरण—इन्द्रियों की प्रत्येक अच्छी क्रिया को सदाचरण कहते हैं। जैसे—अहिंसा, सत्य भाषण, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, पवित्रतादि।

१३८. सद्गुण—मन की प्रत्येक अच्छी क्रिया को सद्गुण कहते हैं। जैसे—दया, क्षमा, सत्य भाव, शील, धैर्य, वैराग्य, भक्ति, सन्तोषादि।

लेखक की अन्य कृतियां

बीजक टीका (सजिल्द)
बीजक टीका (अजिल्द)
बीजक व्याख्या
(दो खंडों में)
प्रथम खंड : रमैनी और शब्द
द्वितीय खंड : ज्ञान चौंतीसा से साखी
बीजक प्रवचन
कबीर बीजक शिक्षा
संत कबीर और उनके उपदेश
कहत कबीर
कबीर दर्शन
कबीर जीवनी
कबीर का सच्चा रास्ता
कबीर की उलटवांसियां
कबीर अमृतवाणी सटीक
कबीर : व्यक्तित्व और कर्तृत्व
कबीर पर शुक्ल.....मेरी दृष्टि
कबीर कौन?
कबीर संदेश
कबीर का प्रेम
कबीर साहेब
पारख सिद्धांत
कबीर परिचय सटीक
पंचग्रन्थी सटीक
विवेक प्रकाश सटीक
बोधसार सटीक
रहनि प्रबोधिनी सटीक
गुरु पारख बोध सटीक
मुक्तिद्वार सटीक
रामायण रहस्य
वेद क्या कहते हैं?
बुद्ध क्या कहते हैं? (भाष्य)
मानसमणि
तुलसी पंचामृत
उपनिषद् सौरभ
योग दर्शन
गीतासार
वैदिक राष्ट्रीयता
श्री कृष्ण और गीता
मोक्षशास्त्र
कल्याण पथ
ब्रह्मचर्य जीवन
बून्द-बून्द अमृत
सब सुख तेरे पास
बसे आनंद अटारी
छाड़हु मन विस्तारा
घूंघट के पट खोल
हंसा सुधि करु अपनो देश
उड़ि चलो हंसा अमरलोक
समुद्र समाना बुंद में
मेरी और ह्वैन सां की डायरी
बंदे करि ले आप निबेरा
ढाई आखर
धर्म को डुबाने वाला कौन?
समझे की गति एक है

धर्म और मजहब
धर्म और मजहब
जीवन का सच्चा आनंद
प्रश्नोत्तरी
पत्रावली
संसार के महापुरुष
फुले और पेरियार
व्यवहार की कला
स्त्री बाल शिक्षा
आप किधर जा रहे हैं?
स्वर्ग और मोक्ष
ऐसी करनी कर चलो
ये भ्रम भूत सकल जग खाया
सरल शिक्षा
जगन्मीमांसा
बुद्धि विनोद सटीक
हृदय के गीत
वैराग्य संजीवनी
भजनावली
राम से कबीर
अनंत की ओर
कबीरपंथी जीवनचर्या
अहिंसा शुद्धाहार
हितोपदेश समाधान
ब्राह्मण कौन?
नास्तिक कौन?
कृष्ण कौन?
संत कौन?
हिन्दू कौन?
जीवन क्या है?
ध्यान क्या है?
योग क्या है?
पारख समाधि क्या है?
ईश्वर क्या है?
अद्वैत क्या है?
जागत नींद न कीजै
सरल बोध
राम-लक्ष्मण प्रश्नोत्तर शतक
सत्यनिष्ठा सटीक
कबीर अमृत वाणी (बड़ी)
बुद्ध क्या कहते हैं? (सटीक)
गृहस्थ-धर्म
कबीर खड़ा बजार में
सत्य की खोज
स्वभाव का सुधार
भूला लोग कहैं घर मेरा
ऊँची घाटी राम की
शंकर क्या कहते हैं?
न्यायनामा (सटीक)
भवयान

कबीर पारख संस्थान
संत कबीर मार्ग, प्रीतम नगर, इलाहाबाद—211 001

झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।
जगत चबैना काल का, कछु मूठी कछु गोद।।

जो उगै सो आथवै, फूले सो कुम्हिलाय।
जो चुनै सो ढहि पड़ै, जनमें सो मरि जाय।।

दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की साँस से, लोह भस्म हो जाय।।

खाय पकाय लुटाय ले, करि ले अपना काम।
चलती बिरिया रे नरा, संग न चले छदाम।।

जग में बैरि कोइ नहीं, जो मन शीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करे सब कोय।।

शीतल शब्द उचारिये, अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुझहि में, दुसमन भी तुझ माहिं।।

गुरुमुख शब्द प्रतीत कर, हर्ष शोक बिसराय।
दया क्षमा सत शील गहि, अमरलोक को जाय।।

—सद्गुरु कबीर